जनसत्ता

रूस से रिश्ते

भारत और रूस के रिश्तों में अब पुराने दिन लौटने के संकेत साफ नजर आ रहे हैं। इस बार प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की रूस यात्रा ज्यादा महत्त्वपूर्ण और सफल इसलिए कही जानी चाहिए कि दोनों देश अपने आंतरिक मामलों में किसी भी बाहरी दखल के खिलाफ खुल कर साथ आए हैं। रूसी शहर व्लादिवोस्तोक में भारत और रूस के बीच होने वाली सालाना शिखर बैठक के बाद प्रधानमंत्री मोदी और रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने साफ कहा कि अपने देश के अंदरूनी मसलों में किसी भी बाहरी दखल के वे खिलाफ हैं। यह बात पिछले महीने जम्मू-कश्मीर से धारा 370 को खत्म किए जाने के बाद पाकिस्तान की बौखलाहट के संदर्भ में उठी। पाकिस्तान और चीन ने संयुक्त राष्ट्र से लेकर तमाम देशों के समक्ष कश्मीर से धारा 370 को हटाने का मसला उठाया था। लेकिन हर जगह से पाकिस्तान को यही सुनने को मिला कि यह भारत का अंदरूनी मसला है और इस पर कुछ नहीं किया जा सकता। इसके अलावा अमेरिका भी समय-समय पर इस मामले में मध्यस्थता का शिगूफा छोड़ता रहा है, जिसे भारत ने साफ तौर खारिज कर दिया। ऐसे में अब इस मसले पर रूस ने भी अपना रुख स्पष्ट कर दिया है। रूसी राष्ट्रपति ने तो कहा भी कि पाकिस्तान कश्मीर को लेकर अफवाहें फैला रहा है। भारत की यह बड़ी कूटनीतिक उपलब्धि है। एक पुराने दोस्त ने भारत के साथ पूरी तरह से एकजुटता दिखाई है।

भारत और रूस के बीच ईरान को लेकर भी बात हुई। भारत पर अमेरिका का दबाव है कि वह उसके साथ कारोबारी रिश्ते खत्म करे। तेल आयात तो भारत को मजबूरन बंद करना ही पड़ा है। भारत किसके साथ व्यापार करे और किसके साथ नहीं, यह उसका अंदरूनी मामला है। रूस तो खुल कर ईरान के साथ है। इसीलिए पुतिन ने साफ-साफ कहा कि किसी के दबाव में ईरान के साथ रिश्ते खत्म नहीं किए जा सकते। कश्मीर और ईरान के मसले पर रूस का खुल कर भारत के साथ आना बड़ी बात है। हालांकि बदलते वैश्विक परिदृश्य में पिछले कुछ दशकों में भारत का अमेरिका की ओर झुकाव ज्यादा बढ़ा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि रूस से भारत के संबंधों पर कोई असर पड़ा। ब्रह्मोस मिसाइल परियोजना से लेकर कई क्षेत्रों में रूस भारत को मदद देता रहा है।

मोदी और पुतिन पिछले एक साल में छह बार मिल चुके हैं। दोनों नेताओं के बीच जिस तरह से निजी रिश्ते बन गए हैं उनका लाभ भारत को मिल रहा है। रूस ने ऊर्जा और अंतरिक्ष क्षेत्र सहित भारत के साथ पंद्रह करार किए हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि भारत की तरक्की में रूस जैसे पहले साथ था, वैसे ही आज भी है। दोनों देशों के बीच हुए असैन्य परमाणु समझौते के तहत रूस भारत में बीस परमाणु इकाइयां लगाएगा। दूसरी ओर, भारत रूस के तेल और गैस क्षेत्र में निवेश करेगा। अंतरिक्ष के क्षेत्र में मदद के तौर पर रूस गगनयान मिशन के तहत भेजे जाने वाले भारत के अंतरिक्ष यात्रियों को प्रशिक्षण देगा। पिछले कुछ सालों में तेजी से विकास करने वाले और उभरती अर्थव्यवस्था वाले देश के रूप में भारत की जो छवि बनी है उसकी अहमियत रूस बखूबी समझता है। रूस यह भी जानता है कि भारत को अपने एक पड़ोसी के कारण दशकों से आतंकवाद झेलना पड़ रहा है। ऐसे में भारत को रूस से हर स्तर पर समर्थन मिलना दोनों देशों के रिश्तों को और प्रगाढ़ करेगा।

आतंक के विरुद्ध

आतंकवादी गतिविधियों पर नकेल कसने के मकसद से सरकार ने एक कदम और आगे बढ़ा दिया है। हाल ही में बने आतंकरोधी कानून के तहत भारत ने पाकिस्तान में पनाह पाए जैश-ए-मोहम्मद के प्रमुख मसूद अजहर, लश्कर-ए-तैयबा के संस्थापक हाफिज मुहम्मद सईद, मुंबई हमले के आरोपी जकी-उर-रहमान लखवी और भगोड़े माफिया दाउद इब्राहिम को आतंकवादी घोषित कर दिया है। कुछ दिनों पहले ही सरकार ने गैरकानूनी गतिविधियां रोकथाम कानून 1967 में एक महत्त्वपूर्ण संशोधन किया था। इस कानून के तहत पहली बार इन चारों को आतंकी घोषित किया गया है। पहले ऐसा कानून न होने की वजह से भारत सरकार इन्हें आतंकी का दर्जा नहीं दे पा रही थी। भारत अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इन चारों के खिलाफ अपनी बात रखता रहा है, पर अब वह दावे के साथ कह सकता है कि उसने इन्हें आतंकी घोषित कर रखा है। इस तरह वह अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इनके प्रत्यर्पण के लिए भी मांग उठा सकता है। अभी तक इनके प्रत्यर्पण की उसकी मांग प्रभावी नहीं हो पा रही थी। हालांकि संयुक्त राष्ट्र ने भी मसूद अजहर और हाफिज सईद को वैश्विक आतंकी घोषित कर रखा है, पर भारत के कानून के मुताबिक इन्हें आतंकी घोषित किए जाने के बाद इन दोनों पर नकेल कुछ अधिक सख्ती से कसी जाने की गुंजाइश बनी है, क्योंकि इन्होंने अपनी ज्यादातर आतंकी गतिविधियों को भारत की जमीन पर अंजाम दिया है।

मसूद अजहर पर जम्मू-कश्मीर विधानसभा परिसर, भारतीय संसद, पठानकोट वायुसेना अड्डे, श्रीनगर के बीएसएफ शिविर और पुलवामा में सीआरपीएफ के काफिले पर हमला करने और भारत में आतंकी गतिविधियों को संचालित करने का आरोप है। हाफिज सईद पर लालकिला, रामपुर में सीआरपीएफ शिविर और मुंबई हमले में शामिल होने का आरोप है। जकी-उर-रहमान लखवी भी इन हमलों में शामिल रहा है। दाउद इब्राहिम पर भारत सहित अनेक देशों में बेनामी जमीन-जायदाद का कारोबार चलाने, धार्मिक कट्टरवाद और आतंकवाद को बढ़ावा देने के लिए आर्थिक मदद पहुंचाने के आरोप हैं। वह तस्करी, जाली नोट के कारोबार, हथियारों की तस्करी, धनशोधन, जबरन वसूली जैसी गतिविधियों में भी शामिल रहा है। 1993 में उसने अपने सहयोगियों की मदद से मुंबई में सिलसिलेवार बम विस्फोटों को अंजाम दिया था, जिसमें ढाई सौ से ऊपर लोगों की मौत हो गई थी। अब वह भगोड़ा है। इन सभी के खिलाफ भारत के पास पुख्ता सबूत हैं, जिन्हें वह पाकिस्तान को सौंप चुका है। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी वे सबूत साझा हैं।

भारत जब भी अपने यहां हुई आतंकी घटनाओं से जुड़े दस्तावेज पाकिस्तान को सौंपता रहा है, तो वह उन्हें सीधा खारिज कर देता है। वहां की अदालतें उन्हें नकार देती रही हैं। पाकिस्तान की दलील रही है कि मसूद अजहर, हाफिज सईद और लखवी आतंकी नहीं, समाजसेवक हैं। इस तरह इन आतंकवादियों के खिलाफ कार्रवाई नहीं हो पाती थी। अब गैरकानूनी गतिविधियां रोकथाम कानून के तहत इन्हें आतंकी घोषित किए जाने के बाद भारत अंतरराष्ट्रीय समुदाय की मदद से इनके प्रत्यर्पण की मांग मजबूती से कर सकता है। तब पाकिस्तान के लिए इन सबूतों की अनदेखी करना संभव नहीं होगा। वह पहले ही कुलभूषण जाधव के मामले में अंतरराष्ट्रीय अदालत में मुंह की खा चुका है। उसके झूठे दावे और दलीलें खारिज हो चुकी हैं। इसी तरह ताजा घोषित आतंकियों की हकीकत पर परदा डालना उसके लिए आसान नहीं होगा। आतंकवाद के खिलाफ लड़ रहे देशों का भी इसमें भरपूर समर्थन प्राप्त होगा।

कल्पमेधा

कोई कार्य तुच्छ नहीं है। यदि मनपसंद कार्य मिल जाए तो मूर्ख भी उसे पूरा कर सकता है पर बुद्धिमान वही है जो प्रत्येक कार्य को अपने लिए रुचिकर बना ले।

-विवेकानंद

हमारा गौरव और संविधान

मेनका गुरुस्वामी

संवैधानिक मुकदमे में हम आजादी और हाशिए पर पड़े एक समूह की गरिमा के अधिकारों को दूसरे तक पहुंचाते हैं, यह तर्क देते हुए कि ये अधिकार हर नागरिक के हैं और उसे मिलने चाहिए। इसी तरह अलग-अलग मौकों पर यह पहचान होनी चाहिए जिसमें लोग एक-दूसरे के साथ खड़े हों, हर समूह की आजादी और समानता को सुनिश्चित करें, वे अपने भीतर ही ताकत और जज्बा पैदा करें।

ठीक एक साल पहले इसी दिन यानी छह सितंबर को सुप्रीम कोर्ट ने नवतेज सिंह जौहर मामले में अपने फैसले में कहा था कि भारत के एलजीबीटी समुदाय को समानता, गैर-भेदभाव, गरिमा, अभिव्यक्ति, प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के संवैधानिक मूल्यों का संरक्षण प्रदान किया जाएगा। अदालत ने भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 377 या अप्राकृतिक यौन अपराधों के दंड संबंधी प्रावधान को खारिज कर दिया था। आज जब हम इस अनोखे भारत में इस आजादी के एक वर्ष पूरे होने पर खुशी मना रहे हैं तो हमें अपने संविधान और उसके मूल्यों पर भी नजर डाल लेनी चाहिए जिसकी वजह से अदालती में यह लड़ाई चल पाई और जीत के इस मुकाम तक पहुंच सकी।

साल 2013 में अदालत से मिली हार के बावजूद अप्रैल 2016 में नवतेज जौहर के नेतृत्व में पांच एलजीबीटी भारतीयों ने अपनी याचिकाएं दाखिल कीं। इनमें उन्होंने कहा था कि हमारा समानता, गरिमा, गैर-भेदभाव, जिंदगी और आजादी के संविधान द्वारा दिए गए वचन में पूर्ण विश्वास है और उनके इसी विश्वास ने हम वकीलों उनके मामलों को अदालत ले जाने का मौका दिया। जनवरी 2018 में नवतेज जौहर की याचिका पर सुप्रीम कोर्ट ने नोटिस जारी किया था। इसके बाद जुलाई 2018 तक पांच और रिट याचिकाएं दायर हुईं। एक कारोबारी घराने के सदस्य केशव सूरी से लेकर आरिफ जफर, जिन्हें समलैंगिक होने के अपराध में जेल हो गई थी, रंगीन कुर्ते और जींस पहने आइआइटी से निकली नौजवान पीढ़ी से लेकर हमसफर ट्रस्ट के मशहूर एलजीबीटी कार्यकर्ता तक अदालत पहुंचे थे और चेतावनी दी थी कि जब तक उन्हें देश के दूसरे नागरिकों के समान अधिकार और दर्जा नहीं मिल जाता तब तक वे रुकने वाले नहीं हैं। यह संविधान द्वारा दिए गए वचनों के प्रति इन लोगों के भरोसे को बता रहा था और यही भरोसा न्याय की उम्मीद में इन्हें अदालत तक लेकर गया था।

संपूर्ण नागरिकता हासिल करने के लिए हमें लंबा रास्ता तय करना है। संपूर्ण नागरिकता में सामाजिक और नागरिक अधिकार भी शामिल होंगे, संयुक्त बैंक खाते के लिए या मकान के लिए लीज या साथी के साथ शादी के लिए आवश्यक अधिकार भी इसी में आएंगे। फैसला आने के बाद में हमें कई नई बाधाओं का सामना करना पड़ा है, जैसे सरोगेसी विधेयक और ट्रांसजेंडर विधेयक जिनकी अभी अधिसूचना जारी नहीं हुई है। जैसे ही हम संपूर्ण नागरिक अधिकारों को हासिल करने की दिशा में बढ़ना शुरू करते हैं तो हमें जौहर मामले में अदालत के विधिशास्त्र से मिलने वाले अध्यायों पर गौर फरमाना चाहिए कि किस तरह से भारत में आज बदलाव के लिए संविधान का उपयोग किया जाना चाहिए। इसकी प्रशंसा के लिए हम संविधान की उत्पत्ति से इसकी शुरुआत करते हैं।

भारत का संविधान विशिष्ट है। सन 1946 से 1949 के बीच तैयार किए गए इस संविधान में एक नए देश का ध्यान रखा गया था। कल्पना थी कि यह नया देश जाति व्यवस्था जैसी चली आ रहीं सामाजिक भेदभाव वाली बुराइयों को खत्म करेगा। भारत का संविधान इस अर्थ में भी अद्वितीय है कि यह उन ऐतिहासिक गलतियों और भेदभावों को सुधारने की बात करता है जिनकी वजह से हाशिए पर पड़े समुदायों का वर्तमान और भविष्य टिका है। इसके ठीक उलट, अमेरिका का संविधान है जो दास प्रथा के सुधार की न तो कोई बात करता है न उसमें कोई माफी मांगी गई है।

जौहर के मामले की सुनवाई करने वाली अदालत हमारे संविधान और उसके निर्माताओं की भावनाओं और उम्मीदों से भलीभांति परिचित थी। इसलिए उसने अपना फैसला बहुसंख्यकवाद के मुकाबले और संविधान की नैतिकता की अहम संवैधानिक अपेक्षाओं पर केंद्रित रखा। ये अपेक्षाएं क्या हैं? और ये पूरे भारत के लिए प्रासंगिक क्यों हैं सिर्फ अनोखे भारत को छोड़ कर?

दरअसल, प्रति-बहुसंख्यकवाद अदालतों द्वारा बाहुबली बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों पर अत्याचार रोकने के लिए अपनाई जाने वाली भूमिका है। संवैधानिक नैतिकता संविधान की नैतिकता है, जो सबके लिए समानता, गैर-भेदभाव और स्वतंत्रता के प्रमुख मूल्य हैं। प्रति-बहुसंख्यकवाद और संवैधानिक नैतिकता दोनों का ही मूल डा. आंबेडकर की दूरदृष्टि में निहित था जो संविधान के जरिए निचली जातियों के प्रति ऐतिहासिक भेदभाव को खत्म करना चाहते थे। जातिगत भेदभाव को खत्म करने की हमारी संवैधानिक वचनबद्धता का तात्पर्य यह है कि कई सालों से हमारी अदालतें उस

बहुसंख्यकवादी सामाजिक नैतिकता के खिलाफ अपनी भूमिका निभाती आ रही हैं जो जातिगत व्यवस्था को बनाए रखने का पक्षधर है। बहुसंख्यकों की नैतिकता के खिलाफ जाने की यह न्यायिक भूमिका संवैधानिक नैतिकता को बचाती है और यही एलजीबीटी नागरिकों को संरक्षण के लिए अदालत ले जाती है। और जब नागरिकों के समूहों के मौलिक अधिकारों के हनन की बात आई तो अदालत अपनी जिम्मेदारियों से कैसे बच सकती थी।

2016 के शुरू में अंतरजातीय और अंतर-धार्मिक जोड़ों को संवैधानिक सुरक्षा ने हम वकीलों को यौन साथी के अधिकार- जौहर की इस प्रमुख दलील को तैयार करने के लिए प्रेरित किया। इसका पता एलजीबीटी भारतीयों समेत सबके लिए साथी के अधिकार के अदालत के फैसले में चलता है। इससे पता चलता है कि हम एक-दूसरे की आजादी से मजबूत होते हैं और नागरिकों के किसी भी समूह के लिए सरकार या सत्ता द्वारा तय किए जाने वाले भेदभाव से कमजोर होते हैं।

जौहर मामले में अदालत का यह निष्कर्ष कि संविधान इस अधिकार की सुरक्षा करता है कि भोजन, परिधान, आदर्श, आस्था या यौनिकता धार्मिक, यौन और राजनीतिक अल्पसंख्यकों के लिए एक संवैधानिक जीवनरेखा है। यदि अल्पसंख्यक और सदियों से भेदभाव का शिकार होते आ रहे समूह मिल कर संवैधानिक मूल्यों को अक्षुण्ण बनाए रखें तो यही वह संवैधानिक रोशनी है जो हमारे मौजूदा राजनीतिक माहौल को जगमगाए रख सकती है। हमारी आजादी खत्तियों में नहीं रहती है, बल्कि वह एक-दूसरे में ही निहित रहती है।

संवैधानिक मुकदमे में हम आजादी और हाशिए पर पड़े एक समूह की गरिमा के अधिकारों को दूसरे तक पहुंचाते हैं, यह तर्क देते हुए कि ये अधिकार हर नागरिक के हैं और उसे मिलने चाहिए। इसी तरह अलग-अलग मौकों पर यह पहचान होनी चाहिए कि जिसमें लोग एक-दूसरे के साथ खड़े हों, हर समूह की आजादी और समानता को सुनिश्चित करें, वे अपने भीतर ही ताकत और जज्बा पैदा करें।

यही वह समय भी है जब लैंगिक, जाति और श्रम जैसे मुद्दों पर भी एलजीबीटी समुदाय को भीतर और बाहर से अपने साथ शामिल किया जाए। इसी तरह, भारत में अलग तरह के इन नागरिकों को यह महसूस करना चाहिए कि एक समाज के खिलाफ उपयोग में लाए गए नेशनल रजिस्टर का विस्तार दूसरों के लिए भी किया जा सकता है। जर्मनी का इतिहास हमें यह सबक देता है। अलग-थलग कर दिए समुदायों में हमारी शक्ति कम हो जाती है लेकिन अगर हम एक रहते हैं तो हमारे संविधान द्वारा दिए गए वचनों को पूरा करने की दिशा में हम संघर्ष के लिए आगे बढ़ने की क्षमता को हासिल कर लेते हैं।

आज के दौर के भारत में सामाजिक ताने-बाने को उधेड़ना और भेदभाव का सामान्यीकरण करने की प्रवृत्ति भाईचारे, समानता और गरिमा के संवैधानिक मूल्यों को ध्वस्त करने वाली है। इससे खुद संविधान भी कमजोर होता चला जाएगा।

संविधान को तैयार करने वालों का दर्शन अब भी बहुतों के लिए उम्मीद की तरह है। .... संविधान का भारत हम सबको इस योग्य बनाता है कि हम अपने मन की बात कह सकें, अपनी आवाज तेज कर सकें और हमारी अपेक्षाओं को शक्ति मिले। ...आज हम इसी दर्शन का सम्मान करते हैं। हमें इसी दर्शन का बचाव करना चाहिए।

(लेखक सुप्रीम कोर्ट में वरिष्ठ वकील हैं)

गिद्धों का खत्म होना

संजीव राय

गिद्धों के गायब होने की खबर ने पारसी समाज की एक परंपरा को बदलने के लिए बाध्य किया है। हमारे जीवन में जैसे-जैसे नई चीजें आती हैं, कुछ पुरानी चीजें गायब हो जाती हैं। शहरीकरण और औद्योगीकरण की तेज रफ्तार और तकनीकी विकास की दौड़ में हमारे बीच से गौरैया, महोखा, नीलकंठ, कोयल जैसे कई पक्षी अब गाहे-बगाहे ही दिखते हैं। यही हाल तितलियों और भौंरों का भी है। शहरों में रहने वाले अधिकतर बच्चों को तितली अब फोटो में ही दिखती है। अब खबर यह आ रही है कि शहरों में गिद्ध, चील और कौवे भी कम होते जा रहे हैं। हिरण की हंगुल और संगाई प्रजातियां भी विलुप्त होने के कगार पर हैं।

गिद्ध, चील और कौवों की घटती संख्या से कुछ नई समस्याएं पैदा हो रही हैं। पारसी समुदाय में अपने मृत परिजनों के शव को एक प्लेटफार्म नुमा खुली जगह पर रखने की परंपरा रही है। मुंबई में उस प्लेटफार्म को 'शांति टॉवर' कहा जाता है। यहां वर्षों से, शव रख दिए जाते थे और गिद्ध, चील और कौवे उनका भक्षण कर जाते थे। पारसी समाज में शवों को जलाने या जमीन में दफनाने का प्रचलन नहीं रहा है। उनका मानना है कि शव को जलाने अथवा जमीन में दफन करने से प्रकृति में प्रदूषण बढ़ता है, इसीलिए पारसी लोग मृतक के शरीर को गिद्ध, चील और कौवे के खाने के लिए खुले में छोड़ देते हैं। लेकिन पारसी समुदाय के कुछ सदस्य अब शवों को खुले में गिद्धों के लिए छोड़ने के बजाय उन्हें जलाने लगे हैं।

दुनिया मेरे आगे

बढ़ते प्रदूषण, बीमारी और बीमार लोग और पशुओं के उपयोग में आने वाली कुछ हानिकारक दवाओं का असर शवों के रास्ते गिद्ध, चील और कौवों पर भी पड़ा और उनकी मौत का कारण बनने लगा। इससे इनकी संख्या में भारी गिरावट आने लगी। बंजर-खाली जमीन के अलावा बागों और जंगलों का कटते जाना भी पक्षियों के खात्मे का एक प्रमुख कारण है। एक दशक में गिद्धों की संख्या में नब्बे फीसद से अधिक की कमी आ चुकी है। पक्षियों की संख्या में आई इस गिरावट ने पारसी समाज को बाध्य किया कि वह अपने परंपरागत तरीके को त्याग कर कुछ दूसरे विकल्प तलाशे। पारसी समाज ने सोलर कंसेंट्रेटर की मदद से शवों को कई दिनों तक गरम रखने के प्रयास किए हैं जिससे कौवे आदि भी शवों का भक्षण कर सकें। परंतु गिद्धों के मुकाबले कौवे जयादा समय लेते हैं और बारिश के मौसम में यह सौर उपाय प्रभावी नहीं रह जाता है। ऐसी स्थिति में अब पारसी समाज के कुछ लोग शवों को जलाने की भी वकालत कर रहे हैं। पारसी समाज के लोगों की संख्या देश में एक लाख से भी कम रह गई है। मूलतः व्यापार से जुड़े इस समुदाय के बारे में ऐसा कहा जाता है कि किसी पारसी व्यक्ति की आमदनी अगर पचास हजार रुपए महीने से कम होती है तभी समुदाय उसे गरीब मानता है!

सरकार और दूसरी सामाजिक संस्थाओं के प्रयास से पर्यावरण संरक्षण, गिद्धों के बचाव और संख्या वृद्धि के कुछ प्रयास किए जा रहे हैं। मुंबई के धारावी में कूड़ेदान के ऊपर दो दशक पहले 'नेचर पार्क' बनाया गया था। इसमें औषधि के गुण वाले पौधों के साथ विविध प्रकार के पेड़-पौधे लगाए गए। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे पक्षियों और तितलियों की अनेक प्रजातियां नेचर पार्क में दिखने लगीं। अब आसपास के लोग सुबह-शाम पार्क में टहलने आते हैं और साथ ही स्कूली बच्चे भी अपने शैक्षिक भ्रमण के क्रम में यहां आते हैं और नए अनुभव लेकर जाते हैं।

गिद्धों के साथ ही उल्लू, गुलाबी माथे वाली बत्तख और सारस भी अब बहुत कम दिखते हैं। मछलियों की प्रजातियां भी कम हो रही हैं। गिद्धों का कम हो जाना हजारों साल पुरानी परंपरा को बदल रहा है। चारा-दाना, संरक्षण देकर पक्षियों की मदद की जा सकती है। लेकिन अभी भी हर साल पंद्रह अगस्त के आसपास दिल्ली में भी पतंगबाजी के दौरान मांझे से हुई किसी व्यक्ति की मौत और बड़ी संख्या में पक्षियों के घायल होने की खबर आती है। हम अभी भी पक्षियों को लेकर संवेदनशील नहीं हैं। आक्रामकता हमारे व्यवहार का सामान्य लक्षण बनती जा रही है। हमारा अंधाधुंध शहरीकरण, बागों, नदी-नालों, तालाब-जोहड़ों का खत्म होना दरअसल मानवता के लिए विनाश का रास्ता है। ध्यान से देखिए तो आप के बचपन में आसपास घूमने वाली गौरैया, बनमुर्गी, कोयल, नीलकंठ, महोखा जैसे पक्षी अब विलुप्त होने की कगार पर हैं। तितली के पीछे-पीछे दौड़ना तो आज के बच्चे जानते होंगे, इसमें संदेह है!

विलय के बाद

सरकार ने हाल ही में देश के कुछ प्रमुख सरकारी बैंकों के विलय की घोषणा की है। क्या इस विलय की बहुत जरूरत थी? भारत के मौजूदा सामाजिक-आर्थिक हालात को देखते हुए यह सवाल काफी मायने रखता है। आज से पहले इतने व्यापक स्तर पर कभी बैंकों का विलय देखने को नहीं मिला। आजादी के बाद 20 जुलाई 1969 को चौदह बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था। उस फैसले का मकसद अर्थव्यवस्था में कृषि, लघु उद्योग और निर्यात पर अधिक ध्यान देना था। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से पहले भारत की पूरी पूंजी बड़े उद्योगपतियों और औद्योगिक घरानों के जरिए ही नियंत्रित होती थी। उस व्यवस्था में बैंकों में पैसे जमा करने वाले के लिए किसी तरह की सुरक्षा की गारंटी नहीं थी। फिर 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद तो बैंकिंग क्षेत्र देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ बन गया।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का विलय कर उनकी संख्या कम कर देने का परिणाम शायद कुछ वक्त बाद ही दिखे या हो सकता है इसका दूरगामी परिणाम भी हमारे सामने आए। विशेषकर मानव संसाधन, रोजगार सृजन और अर्थव्यवस्था के विकास के लिहाज से यह फैसला काफी अहम हो सकता है। लेकिन अगला बड़ा सवाल यह है कि क्या इस विलय के बाद बैंकों की गैर निष्पादित संपत्तियां यानी एनपीए की समस्या सुलझ जाएगी? या उस कर्ज पर नियंत्रण लग पाएगा जिसके वापस मिलने की उम्मीद कम ही है? क्या इस फैसले से बैंकों की काम करने की क्षमता में कुछ सुधार होगा?

दरअसल, इस विलय से बैंकों के काम का स्तर और बढ़ भी सकता है जिसमें कर्ज देने की क्षमता और निवेश भी शामिल होगा तथा देश में वैश्विक स्तर के मजबूत बैंक बनेंगे। लेकिन इसके अपने जोखिम भी हैं। कहीं मजबूत बैंकों के सहारे कमजोर बैंकों को उठाने की जगह ऐसा न हो कि कमजोर बैंक ही मजबूत बैंकों को डुबो दें! दुनिया की चार सबसे बड़ी लेखा संस्थाओं में से एक केपीएमजी के एक शोध के अनुसार 83 फीसद विलय ऐसे रहे हैं जो शेयरधारकों को अधिक मुनाफा देने में नाकाम रहे हैं।

● *प्रतीत दहिया, राजकीय महाविद्यालय, बागपत*

खतरे की अनदेखी

असम में राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर यानी एनआरसी तैयार करने का एक बड़ा आधार यही था कि राज्य की सांस्कृतिक विरासत के साथ-साथ वहां के मूल निवासियों की पहचान के लिए खतरा पैदा हो गया था। विडंबना यह है कि कई राजनीतिक दल इस खतरे की अनदेखी करने की वकालत कर रहे हैं। यह ठीक नहीं है। आज जब हर देश अपने और विदेशी नागरिकों की पहचान सुनिश्चित कर रहा है तब भारत को भी यह तय करना चाहिए कि देश में रहने वाला कौन भारतीय है और कौन नहीं? चूंकि यह पहचान तय करना वक्त की मांग है इसलिए एनआरसी का काम उदाहरण पेश करने वाला होना चाहिए। इसी से एनआरसी पर हो रही राजनीति थमेगी।

● *हेमंत कुमार, गोराडीह, भागलपुर, बिहार*

आस्था और पर्यावरण

देश में इन दिनों गणपति महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। इसमें लोग अपने घरों-मोहल्लों में गणेशजी की मूर्तियां स्थापित करते हैं। लेकिन आस्था के साथ-साथ पर्यावरण को बचाने की नैतिक जिम्मेदारी भी हमारे कंधों पर है क्योंकि इन मूर्तियों का विसर्जन नदियों, जलाशयों में किया जाना निश्चित है। वास्तव में नदियां राष्ट्र की जीवनदायिनी होती हैं और इनका संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है। इसलिए सरकार द्वारा निर्धारित स्थलों पर ही मूर्तियों के विसर्जन करना चाहिए ताकि नागरिक-सरकार सहयोग से प्राकृतिक स्रोतों को प्रदूषण से बचाया जा सके और अप्रत्यक्ष रूप से जल शक्ति मंत्रालय को समर्थन मिले जिससे शीघ्र ही 'घर-घर नल' का सपना साकार हो।

● *कपिल एम वड़ियार, पाली, राजस्थान*

मौत के पटाखे

पंजाब के बटाला में बीते बुधवार को जो हुआ वह अपेक्षित ही था। घने रिहाइशी इलाके में पटाखे बनाने की फैक्ट्री पूरी तरह ध्वस्त हो गई। तेईस लोग मारे गए। इससे किसी को क्या फर्क पड़ता है! बस जांच के आदेश दे दिए गए हैं। मुआवजे का ऐलान हो गया है जैसा कि हर हादसे के बाद होता है। वही रस्मअदायगी गुरदासपुर में भी की गई थी। उसके बाद यही कहानी कहीं और दोहराई जाएगी।

पटाखों से प्रदूषण बढ़ता है। जान-माल का नुकसान होता है। पिछले दिनों सुप्रीम कोर्ट ने भी पटाखों पर प्रतिबंध लगा दिया था। बावजूद इसके, किसी को कोई फर्क ही नहीं पड़ रहा है। दक्षिण का शिवकासी तो पटाखों का शहर ही माना जाता है। वहां कई दुर्घटनाओं में सैकड़ों लोग मारे गए। 10 अप्रैल 2016 को केरल में कोल्लम के पुत्तिंगल मंदिर में सुबह तीन बजे पटाखों से लगी आग के कारण 111 लोग मारे गए थे और 150 से अधिक घायल हुए थे। फिर भी पटाखों से छुटकारा पाने के लिए कोई कुछ नहीं कर रहा है। मतलब, हादसों और मौतों से ज्यादा तरजीह हम अपनी आस्था को देते हैं। हम लोगों को आविष्कार से अधिक चमत्कार में विश्वास है। जब तक ऐसा है, ये हादसों से लोग मरते रहेंगे।

● *जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर, बिहार*

जाति की जगह

हमारे देश की अनेक सामाजिक संस्थाओं खास तौर पर हॉस्टलों के नाम जातियों पर रख दिए गए हैं। मसलन जाट हॉस्टल, राजपूत हॉस्टल, ब्राह्मण छात्रावास, मीणा छात्रावास, यादव हॉस्टल आदि-आदि। जब हम पहले से ही हॉस्टलों को उनकी जाति या वर्ण से चिह्नित करते हैं तो समाज को जातिगत खांचों में बांट कर कोई अच्छा संदेश नहीं देते हैं बल्कि छात्रों में जातिगत भेदभाव और कटुता को ही बढ़ावा देते हैं। अगर हमारा देश धर्मनिरपेक्ष है तो ऐसे नामकरण धर्मनिरपेक्षता की कोई सार्थक मिसाल बिल्कुल भी पेश नहीं करते। समय आ गया है जब जातियों के आधार पर संस्थाओं का नामकरण करने की परंपरा को समाप्त किया जाए।

बहुत पहले की बात है। मेरा तबादला राजस्थान के एक दूरदराज इलाके में हुआ था। जब तक मैं अपने परिवार को ले जाता, मैंने वहां के एक अच्छे और चर्चित हॉस्टल/ विश्रामालय में ठहरने का मन बनाया। संपर्क करने पर हॉस्टल के मैनेजर ने साफ कह दिया कि यह एक विशेष संप्रदाय के लोगों के लिए सेठजी ने खोला है, सभी के लिए नहीं। मेरे खूब निवेदन करने पर भी प्रबंधक महोदय माने नहीं। आखिर जो सामाजिक संस्थाएं अथवा हॉस्टल जरूरत पड़ने पर आपके काम न आएं और अपनी जातिवादी मानसिकता पर अडिग रहें, उनकी समाजसेवा और जातिगत अस्मिता किस काम की?

● *शिबन कृष्ण रैणा, अलवर*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com